

## अलीपुर गांव में शिक्षा : बच्चे जानने वालों के रूप में

□ पदमा एम. सारंगपाणि

अनुवाद : रामकुमार सिंह

अलीपुर गांव में स्कूली शिक्षा, बच्चों की समझ और उनके अनुभवों के अध्ययन की शृंखला में यह अंतिम लेख है। इस लेख में बच्चों के स्कूली ज्ञान और स्थानीय ज्ञान के बीच विद्यमान अंतराल को दर्शाया गया है। बच्चों के संवादों में प्रयुक्त ज्ञान का तत्व मीमांसक विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन बताता है कि स्कूली ज्ञान सामान्यतः 'नये' के रूप में अनुभूत नहीं दिखता या 'नया रचा नहीं जाता' बल्कि पहले से मौजूद का 'अर्जित किया जाना' है। ऐसा लगता है कि पहले से ज्ञात बातों में जो बातें महत्वपूर्ण और जानने योग्य हैं उन्हें ग्रहण करना है। पूर्ववर्तियों से इस ज्ञान को लेना और संरक्षित करना है और आगामी पीढ़ी को सौंप देना है।

अलीपुर गांव में स्कूली शिक्षा और स्कूल के बारे में बच्चों की समझ और उनके अनुभव की शृंखला में यह अंतिम लेख है। हमने देखा कि स्कूली उत्पीड़न के अनुभवों को सहने के साथ साथ बच्चे इन अनुभवों में सक्रिय सहभागिता निभाते हैं, इन्हें अर्थ देते हैं और इन्हें स्कूली ज्ञान में ढालते हैं। यह माना जाता है कि स्कूल का कार्य बच्चों को सांस्कृतिक पूंजी प्रदान करना है। गांव की संस्कृति अपने आप में जानने लायक नहीं समझी जाती। हरियाणवी भाषा और गांव में कामों के परंपरागत तरीके 'पढ़े लिखे आदमी' को शोभा नहीं देते। इसलिए पाठ्यक्रम की उच्च स्तरीय संरचना छात्रों द्वारा स्वीकार की जाती थी।

परा विद्या जैसी यह सांस्कृतिक पूंजी याद करके अर्जित की जाती थी। समझना न केवल गैर जरूरी था, यह सीखने का निचला दर्जा माना जाता था जो किसी के द्वारा तभी काम में लिया जाता था, जबकि वह सीधे याद न कर सकता हो। यह अंतिम लेख दो हिस्सों में है। पहले भाग में बच्चों के ज्ञान का गठन बताया गया है। जिसमें स्कूली और रोजमर्रा दोनों का ज्ञान शामिल है। दूसरा भाग निष्कर्ष के रूप में है। इसमें मैंने इस अध्ययन से उभरी बच्चे की छवि को एक जानने वाले शिक्षार्थी के रूप में प्रस्तुत किया है। आखिर की टिप्पणी में इस अध्ययन के निहितार्थ हैं।

### ज्ञान का गठन

एक पिछले लेख में बताया गया था कि स्कूली पाठ्यक्रम किस कदर ढांचाबद्ध है। अलीपुर स्कूल में मेरे फील्ड वर्क के दौरान, मैं ने यह खोजने की कोशिश की कि बच्चे अपने स्कूली अनुभवों को कैसे अर्थ प्रदान करते हैं और 'स्कूली ज्ञान' का अपने आप में वे क्या अर्थ निकालते हैं। हमने पिछले लेख में देखा कि 'स्कूली ज्ञान' की इस रूप में एक विशिष्ट श्रेणी है, 'जो जानना चाहिए', और इसे याद करके सीखा जाता है। इसके विपरीत,

स्कूल से बाहर रोजमर्रा के अनुभवों में निहित ज्ञान को अर्जित करने के प्रति बच्चे सचेत नहीं हैं। एक यह प्रश्न था कि बच्चों द्वारा स्कूल में सीखे गये तथ्य उनके सामान्य चिंतन विन्यास का ही अंग बनते हैं या वे उनके कार्यकलापों को भी प्रभावित करते हैं।

इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए बच्चों को सुनना और उनसे बात करना ही पर्याप्त नहीं था। मैंने उनसे कुछ खास तरह के सवाल किये जो उनके स्कूली ज्ञान का उनकी रोजमर्रा की जिन्दगी से संबंध जोड़ते थे। इसके लिए कुछ समस्या मूलक वाक्य बनाये और इन्हें कागज की एक शीट पर लिख लिया। उदाहरण के लिए, उन्हें भारत के भौतिक भूगोल के बारे में पढ़ाया गया था, सूची के वाक्यों में से एक इस प्रकार था : "अलीपुर विशाल उत्तरी मैदान में स्थित है।" बच्चों ने इस वाक्य को पढ़ा या सुना और तब मुझे बताया कि यह सत्य है या नहीं। और उन्होंने यह भी बताया कि उनके इसे सही या गलत मानने का क्या आधार है। अगर बच्चों ने यह कहा कि वे नहीं जानते हैं कि यह सत्य है या गलत तो उनसे पूछा गया कि फिर वे इस बात का पता कैसे करेंगे? इसी के साथ, जब बच्चों की सामान्य गतिविधियों के बीच मुझे अवसर मिला, मैं ने यह जानने के लिए उनसे सवाल किये कि वे स्कूली ज्ञान को स्कूल से बाहर की दुनियां से किस तरह जोड़ सकते हैं? मैं उनके उत्तरों के विश्लेषण को दो मुख्य आयाम दूंगी। पहला बच्चों के सोच और तार्किकता के संदर्भ से संबंधित है? दूसरा बच्चों की स्कूल और स्कूल से बाहर संदर्भित तत्व मीमांसक गतिविधियों की प्रकृति से संबंधित है।

### चिंतन के लिए संदर्भ

ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ अपवादों को छोड़कर बच्चे स्कूली और स्कूल से बाहरी ज्ञान के बीच सहसंबंध स्थापित नहीं कर पाते और यह कि ये सारतः सोचने के पृथक पृथक संदर्भ हैं।

ऐसा सह संबंध स्थापित करने से संबंधित प्रश्नों पर मिली प्रतिक्रियाओं को चार भिन्न प्रकार की श्रेणियों में बांटा जा सकता है। ऐसी ज्यादातर प्रतिक्रियाएं आश्चर्य और अविश्वास से संबद्ध थीं। दूसरी केवल स्थानीय ज्ञान की तर्कशीलता वाली थीं। तीसरे प्रकार की प्रतिक्रियाओं में व्यावहारिक सोच विचार पर निगमनिक तर्कशीलता का जोर था। चौथे प्रकार की थोड़ी सी प्रतिक्रियाओं में शास्त्रीय निगमनिक तर्कशीलता थी। अब मैं इन भिन्न प्रतिक्रियाओं के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करूंगी।

अनेक बच्चों ने इस बात पर आश्चर्य और अविश्वास व्यक्त किया कि स्कूली ज्ञान को रोजमर्रा के ज्ञान से भी जोड़ा जा सकता है। पांचवीं कक्षा के सभी बच्चे थार रेगिस्तान के बारे में एक पाठ पढ़ चुके थे और इसे दोहरा चुके थे। मैंने उन्हें इस वाक्य पर टिप्पणी करने के लिए कहा : “थार रेगिस्तान अलीपुर के पश्चिम में है।”

सुरिन्दर : “होगा, क्या पता।”

- तुम कैसे दूँदोगे

“हम जायेंगे, देखेंगे और दूँद लेंगे।”

- क्या यह किताब में नहीं है ?

- “नहीं, किताब में अलीपुर के बारे में कुछ नहीं है। यहां अलीपुर कहां से आ गया।”

सुरिन्दर को ताज्जुब था कि साफ तौर पर स्कूली ज्ञान के बीच अलीपुर का उल्लेख कैसे किया जा रहा था। स्कूल से बाहर भी बच्चे स्कूल में सीखी हुई बातों को अपने आस पास की दुनियां से कभी नहीं जोड़ते थे। अपनी रोजमर्रा की गतिविधियों में उन्हें ऐसा संबंध जोड़ने की कोई जरूरत भी नहीं पड़ती थी। यहां तक कि मैं जब नरमी से उन्हें इसके लिए प्रेरित करती तो भी उनकी इसमें कोई खास रुचि नहीं होती थी। पांचवीं कक्षा को हाल ही विज्ञान के विषय में विभिन्न झकड़ा जड़ों के बारे में पढ़ाया गया था। एक शाम, जॉनी और सुरिन्दर जिस शिक्षक के पास ट्यूशन पढ़ते थे, उसके घर के पिछवाड़े से कन के पौधों को उखाड़ने में अपने शिक्षक की मदद कर रहे थे। एक मोटी झकड़ा जड़ की ओर इशारा कर मैंने पूछा - “ये क्या है ?” उन तीनों ने कंधे उचका कर कहा - “क्या पता ? ... झाड़ होगा ...क्या पता ?”

अपने विज्ञान के पाठ से इसका संबंध जोड़ने की बात तो छोड़िये, इस असामान्य जड़ की जांच करने में भी उनकी कोई रुचि नहीं थी।

दूसरी तरह के प्रत्युत्तर जो ज्ञात स्थानीय प्रक्रियाओं से जुड़े स्थानीय ज्ञान के बारे में तर्कशीलता से संबंधित थे, उनमें किसी चीज को समझने में स्कूली ज्ञान के महत्व की बात छोड़िये, इनका

कोई निगमनिक अर्थ भी नहीं था। इन प्रतिक्रियाओं में या तो पाठ्यपुस्तकों की भाषा और शब्दावली की जगह स्थानीय भाषा का इस्तेमाल किया जाता था अथवा चीजों के वर्गीकरण और कार्य-कारण संबंध की स्थानीय समझ प्रयुक्त की जाती थी। देश के संदर्भ में गांव का कोई स्थान नहीं होता था। पाठ्यपुस्तक में बीजों और अंकुरण के बारे में दिए गये तथ्य पौधों और इनकी वृद्धि को लेकर स्थानीय ज्ञान से भिन्न थे। चौथी और पांचवीं कक्षा के बच्चे यह पढ़ चुके थे कि बीज में भ्रूण होता है। मैंने उन्हें इस वाक्य पर टिप्पणी करने को कहा “गेहूं में भ्रूण होता है।” इस पर प्रतिक्रिया थी, “बीज बोते हैं। हम गेहूं खाते हैं। वो बीज नहीं हैं।” यह समझ उस स्थानीय वर्गीकरण पर आधारित है जहां बोने और खाने के आधार पर ‘बीज’ और ‘अनाज’ के बीच अंतर किया गया है। वैज्ञानिक वर्गीकरण में इस अंतर को नहीं माना गया है। बच्चे यह भी पढ़ चुके थे कि सभी पौधे बीजों से उगते हैं। तो भी, जो बच्चे मुझे अपने खेतों में लेकर गये, वे यह विश्वास नहीं करते थे कि घास बीजों से उगी है : “ये तो मिट्टी में अपने आप उग आती है।” उनके इस सोच की व्याख्या यही हो सकती है कि वे केवल फसलों के बीजों का ही बोया जाना देखते थे।

अलीपुर गांव भारतीय भौगोलिक और जलवायु गत विचारणाओं से भी अछूता दिखता था। सामाजिक विज्ञान की पुस्तक के अनुसार भारत में तीन ऋतुएं हैं। चौथी और पांचवीं कक्षा के सभी बच्चों ने यह पढ़ा था। लेकिन जब इस वाक्य पर उनसे टिप्पणी करने को कहा गया, “अलीपुर में तीन ऋतुएं हैं” तो उनमें से अधिकांश ने इसे गलत करार दिया।

सतीश और जोगी : “नहीं, यहां चार हैं - गर्मी, सर्दी, बरसात और बसंत।

जब उन्हें पाठ्यपुस्तक से इसका अंतर बताया गया तो भी उन्होंने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

आशीष : “हां” (उसने ऋतुओं के नाम दोहरा दिये)

सुलेमान : “लेकिन अलीपुर में ज्यादा हैं, सर्दी, गर्मी, बरसात और पतझड़।”

लेकिन अलीपुर भारत में है और भारत में तीन ऋतुएं हैं।

सुलेमान ने कंधे उचकाकर कहा : “कुछ गांव में पतझड़ नहीं होता। उनके लिए तीन ऋतुएं हैं।”

पाठ्यपुस्तकों में ऋतुओं के नाम ‘ग्रीष्म’, ‘शीत’, और मानसून दिए हुए थे। लेकिन बच्चे इनके लिए अपने स्थानीय प्रचलित नामों - ‘सर्दी’, गर्मी और बरसात’ आदि ही प्रयुक्त करते थे। इसी तरह, भारत के मानचित्र में अलीपुर गांव तो दर्शाया नहीं गया था। जब बच्चों से इसका कारण पूछा गया तो वे भारत से गांव के संबंधों की बजाय स्थानीय विचारों को सामने रखने लगे।

“अलीपुर उत्तरी विशाल मैदान में स्थित है ।”

नरेश : “नहीं” ( उसने भीम से पूछा ) “अब तुम बताओ”

भीम : “नहीं ।”

- तुम्हें ये कैसे पता ?

नरेश : “यहां कोई मैदान नहीं, यहां घर ही घर हैं ।”

भीम : “यह यू.पी. में है ।”

क्या यू. पी. में घर नहीं है?

नरेश भीम से : “अब तुम बताओ ।”

भीम ने कंधे उचकाये और कुछ नहीं बताया ।

कुछ बच्चे धीरे-धीरे “उत्तर... दक्षिण... पूरब... पश्चिम... गलत” बोलते हुए गांव की दिशा पता कर रहे थे । वे उत्तर खोजने के लिए दिशाओं के बारे में अपनी स्थानीय जानकारी को काम में लेने की कोशिश कर रहे थे ।

बच्चों के सामने जो अगला वाक्य रखा गया वो था, “अलीपुर गांव से पश्चिम दिशा में पैदल चलते हुए हम रेगिस्तान तक पहुंच सकते हैं ।” इस वाक्य को जांचने में साधारण निगमनिक तर्कणा की बजाय ऐसी तर्कशीलता सामने आयी जो व्यावहारिक विचारों, ज्ञान के आधार पर किये जाने वाले कार्यों से प्रभावित थी ।

सुलेमान : “यह हो सकता है । मेरा गांव पश्चिम में है और वहां रेगिस्तान है । लेकिन इसमें समय बहुत लगेगा । एक या डेढ़ महीना । बस से जायें तो चौबीस घंटे लगेगे ।”

हम यह कैसे पक्का कर सकते हैं ?

सुलेमान : “किताबों में पढ़कर ।”

भीम : “रेगिस्तान भारत के पश्चिम में है । हम वहां पहुंच जायेंगे लेकिन इसमें पांच छह दिन लगेगे ।”

नरेश : “हमें सोचना पड़ेगा । इसमें कहां है ? “(वह वाक्य को पढ़ता है ।)”

भीम : “लेकिन हमें खाना भी तो खाना पड़ेगा ।”

नरेश : “खाने की बात छोड़ । हम इंगे (इधर) से पहुंचेंगे? (वह पश्चिम दिशा की ओर संकेत करता है ।)”

भीम : “किताब में लिखा है कि रेगिस्तान पश्चिम में है ।”

नरेश : “यह किताब में छपा है ... यह भारत के पश्चिम में है और दिल्ली भारत में है इसलिए हम पहुंच जायेंगे ।”

- आपने यह कैसे बताया ?

नरेश : “किताब में पढ़कर ।”

- पढ़कर ?

नरेश : “नहीं, सोचकर ।”

इस अंतिम प्रसंग में नरेश ऐसा संकेत देता है कि वह ज्ञान के दोनों क्षेत्रों को जोड़ रहा है। शास्त्रीय निगमनिक तर्कशीलता में दो ही छात्र खुद को सहज महसूस करते थे । आगे दिए प्रसंग में मैं ने दिनेश और दीपक से ‘अलीपुर उत्तरी विशाल मैदान में स्थित है ।’ वाक्य से संबंधित सवाल पूछे । दिनेश ने तर्क के निगमनिक रूप को स्पष्टतः प्रयुक्त किया। “सभी ‘अ’ ‘स’ हैं । ‘ब’ ‘अ’ का भाग है इसलिए ‘ब’ ‘स’ है ।”

दीपक : “यह पंजाब से उत्तर प्रदेश तक है ।”

दिनेश : “यह सामाजिक विज्ञान में है । यह मानचित्र में है। हरियाणा भी इसमें आता है । और दिल्ली भी इसी रंग में दिया हुआ है ।”

मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न संस्कृतियों में लोगों की तर्कशीलता की प्रकृति का अध्ययन करते हुए पाया है कि पूर्व-साक्षर या मौखिक परंपरा वाले समाजों में, तर्कशीलता में स्थानीय संदर्भ और व्यावहारिक चिंतन प्रभावी होता है। इसके विपरीत स्कूली शिक्षा प्राप्त लोग तार्किकता के अमूर्त रूपों का प्रयोग करते हैं । उदाहरण के लिए यदि कुल्हाड़ी, हल, हथौड़ा और बैल- इन चार चीजों को वर्गीकृत करने के लिए कहा जाए तो यह पाया गया है कि स्कूली शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अमूर्त श्रेणियों के आधार पर वर्गीकरण करेगा, जैसे - ‘जीवित -निर्जीव’ । इसलिए हथौड़ा, कुल्हाड़ी और हल एक श्रेणी में होंगे जबकि बैल दूसरी में । इसके विपरीत, जो व्यक्ति स्कूली शिक्षा प्राप्त नहीं है, इनका वर्गीकरण व्यावहारिक अनुभवों के आधार पर करना चाहेगा, मसलन स्थानीय संदर्भ में इनके प्रयोग के आधार पर । अतः वे हल और बैल को एक श्रेणी में रखेंगे क्योंकि वे खेती जोतने में काम आते हैं और हथौड़ा व कुल्हाड़ी को एक साथ क्योंकि ये लकड़ी के काम में प्रयुक्त होते हैं । ‘सजीव-निर्जीव’ की श्रेणी यहां बहुत व्यावहारिक नहीं है ।

मौखिक तार्किक समस्याओं में भी ऐसा ही अंतर पाया जाता है। हममें से बहुत इस प्रकार की निगमनिक तर्कशीलता से परिचित होंगे :

सभी मनुष्य नश्वर हैं ।

सुकरात एक मनुष्य है ।

अतएव सुकरात नश्वर है ।

पहली दो पंक्तियों के आधार पर ही हम सभी तीसरी पंक्ति के निष्कर्ष को स्वीकार कर लेंगे । न कि सुकरात के बारे में अपनी किसी विशेष जानकारी के आधार पर। सोवियत संघ के एक मनोवैज्ञानिक ए.आर. लूरिया ने सोवियत संघ के केन्द्रीय एशियन भाग के किसानों को ऐसी ही कुछ समस्याएं हल करने को दीं । कुछ समस्याएं उनके स्थानीय अनुभवों पर आधारित थीं । उदाहरण के लिए : “कपास उष्ण और आर्द्र क्षेत्र में पैदा होता है । गांव उष्ण और आर्द्र है । यहां कपास पैदा होगा या नहीं ?” अन्य समस्याएं उनके व्यावहारिक अनुभवों से संबद्ध नहीं थीं । “उत्तर में जहां वर्ष भर बर्फ रहती है, वहां भालू सफेद हैं । कस्बा ‘एक्स’ उत्तर में है। उस कस्बे में भालू सफेद होंगे या नहीं ?”

पहले प्रकार के सवालों के जबाब में अनपढ़ किसानों को कोई परेशानी नहीं होती थी। वे सही उत्तर निकाल लेते थे। लेकिन जब उनसे पूछते कि 'कैसे?' तो वे तार्किक आधार पर कुछ कहने की बजाय अनुभवों के आधार पर अपना पक्ष रखते थे: "ऐसे ही तो है यह; मुझे मालूम है।" सफेद भालू से जुड़ी दूसरे प्रकार की समस्याओं के संदर्भ में उनकी प्रतिक्रिया खास तरह की थी: "मुझे, क्या मालूम भालू का रंग कैसा था? तुम्हारे मित्र ने उसे देखा था, उसी से पूछो।" इसके विपरीत, जो किसान कुछ समय स्कूल में पढ़ चुके थे, उन्होंने इन सवालियों को अपनी ही तरह से लिया और सही उत्तर ढूँढ निकाला। कोल और स्क्राइवर का मत है कि ऐसा इसलिए नहीं है कि जो किसान स्कूली शिक्षा प्राप्त हैं उन्होंने सोचने के नये तरीके सीख लिये हैं, बल्कि उनका मानना है कि स्कूल में जाने के कारण वे संवाद के निगमनिक संदर्भों और ऐसी प्रायोगिक संरचनाओं से अधिक परिचित थे।

अलीपुर स्कूल से निकले नतीजों से एक सवाल खड़ा होता है। ऐसा क्यों है कि ये बच्चे जो स्कूल जा रहे हैं, जहां व्यावहारिक अनुभव और सोच-विचार का महत्व है, वहां भी प्रधानतः संदर्भबद्ध तरीकों से ही चिंतन करते हैं? परम्परागत विकासवादी मनोवैज्ञानिक कह सकते हैं कि बच्चे उस तरह का अमूर्त चिंतन करने के लिहाज से अभी छोटे हैं। एक अन्य व्याख्या कोल और स्क्राइवर की अवधारणा को आगे बढ़ाती है। हम पहले ही देख चुके हैं कि यहां स्कूली और गैर-स्कूली ज्ञान के बीच कठोर विभाजन है जो इन्हें भाषा, शब्द विन्यास और ज्ञान के स्तर पर परस्पर अलगाता है। अतः बच्चों के लिए, सोचने के ये दो बिल्कुल अलग संदर्भ हैं। जिन क्षेत्रों को वे अपने स्थानीय अनुभवों से जुड़ा अनुभव करते हैं जैसे - गैर स्कूली क्षेत्र, वहां उनकी तर्कशीलता परम्परागत साक्षरतापूर्व रूपों में प्रकट होती है। यहां यह नहीं कहा जा रहा है कि साक्षरता पूर्व चिंतन अ-निगमनिक है लेकिन यह कहीं अलग-थलग नहीं है बल्कि व्यवहार से संबद्ध है।

### तत्व मीमांसक गतिविधि

तत्व मीमांसा ज्ञान का अध्ययन है। तत्व मीमांसक गतिविधि यहां जानने और ज्ञान से जुड़ी गतिविधियों के लिए प्रयुक्त की गई है। इनमें सीखने के अलावा जिज्ञासा, संदेह करना, प्रश्न करना, खोज करना, यह पता करना कि हम क्या नहीं जानते, तथ्य की पुष्टि करना जिसे सत्य मानते हैं उसके लिए पक्ष प्रस्तुत करना आदि शामिल हैं। यहां मैं शैक्षिक और गैर-शैक्षिक स्थितियों में, स्कूल में और उससे बाहर बच्चों की दैनन्दिन तत्व मीमांसक गतिविधि की प्रकृति पर तथ्य प्रस्तुत करूंगी।

सामान्यतः रोजमर्रा की जिन्दगी में जिन गतिविधियों द्वारा बच्चों की अपने आस-पास के भौतिक परिवेश से अन्तर्क्रिया होती थी उनमें साईकिल चलाना सीखना, घास खोदने, चीनी तैयार करने, पौधे निराने जैसी चीजें थी। बच्चों द्वारा आविष्कृत अनेक

खेलों में भौतिक दुनिया का ज्ञान जुड़ा हुआ था, जैसे ढलान वाली छत पर बेंरों को इस तरह फेंकना कि वे तेजी से नीचे आर्यें या गोल पाइपों पर चलना इत्यादि। इस ज्ञान को वे अपनी उक्तियों में उत्तेजित होकर व्यक्त करते "देखो, यह दो दिन बाद (पककर) कटने के लिए तैयार है। "देखो, यदि तुम इसे ऐसे फेंकोगे तो ज्यादा तेजी से नीचे आयेगा।" ये अभिव्यक्ति पूरी तरह से वार्तालाप नहीं होती थी। ऐसा प्रतीत होता था कि वे एक भाषा पाने पर जोर दे रहे थे।

मनोज : "वह उड़ने वाला सांप सदैव बहुत गुस्से में होता है, यह उड़ता है और तुम्हें यहां टक्कर मारता है (वह टक्कर मारने का अभिनय करता है।)"

अन्य : "नहीं यहां" (वह सिर के पीछे टक्कर मारने का मूकाभिनय करता है।)

मनोज : "हां, यहां और यहां (वह सिर के आगे पीछे टक्कर मारने का मूकाभिनय करता है।)"

सुनील : "वे कहते हैं यदि उड़ते सांप की परछाईं तुम पर पड़ जाये, तुम मर जाओगे।"

जॉनी : "तुम्हें पता है वे सांपों को जलाते हैं। यदि इसका धुंआ किसी को छू जाये, वह मर जायेगा।"

बच्चों के वार्तालाप में उपरोक्त संवाद खासा अजीब है जहां वे सूचनाएं जोड़ते जा रहे हैं। यह 'एक दूसरे से' बात करने की अपेक्षा 'एक दूसरे पर' बात करने जैसा है। बच्चे ऐसे अवसर तलाशते रहते और पैदा कर लेते हैं जहां जो वे जानते हैं उसे कह सकें। एक बच्चा अक्सर मुझे कहता : "दीदी, मुझेसे होली के बारे में पूछो, मैं जानता हूं।" यह ऐसा ही था जैसे वह कुछ कहने का अवसर चाहता था जहां वह अपनी बात को 'एक जानकार की तरह' कह सके।

सामान्यतः वार्तालाप में कही गयी हर बात स्वीकार कर ली जाती थी, बात के समर्थन में तथ्य, प्रमाण या औचित्य सामान्यतः नहीं जोड़े जाते थे। ऐसा केवल तभी होता था जब बच्चे महसूस करते थे कि उनकी बात को चुनौती दी जा सकती है तब वे उसमें प्रमाण जोड़ते थे। लेकिन अक्सर ऐसा प्रतिस्पर्धात्मक और अविश्वास के माहौल में ही होता था। जब श्रोता संदेहशील हो और उससे कही गयी बात को गलत साबित करने की चुनौती वाली प्रतिक्रिया अपेक्षित हो, तब बात के साथ प्रमाण भी शामिल होता था। यह छुरेबाजी की तरह था और इसमें सदैव कोई शक्ति का खेल जुड़ा होता था। यह नीचे अजय और विपिन के बीच वार्तालाप के अंशों में उद्धृत है जो मेरे साथ रेलवे लाइन के सहारे काफी दूर तक घूमने गये थे। दोनों बच्चे मित्र नहीं थे और जिस तरह उन्होंने परस्पर बातचीत की, उससे यह बात साफ पता चलती थी।

अजय : ..... “हम पटरी के सहारे वापिस घर आ सकते हैं ।”

विपिन: (चुनौती की मुद्रा में) “क्या तुम कभी इस रास्ते घर आए हो ?”

अजय : “ नहीं, लेकिन अपने घर से हम रेल देख सकते हैं। यह रेलवे लाइन ठीक से सैट नहीं की हुई है क्योंकि यह पूरी चमकती नहीं है । एक साइड दूसरी से ज्यादा चमकीली है।”

कुछ देर बाद :

हम चल रहे हैं जबकि अगली ट्रेन आने वाली है, हम ट्रेन के पहियों के नीचे सिक्का रखकर इसे चपटा करना चाहते हैं।

विपिन: “अगली गाड़ी 1:30 पर है । मैंने यह समय तालिका में देखा था ।”

अजय : “ क्या यह जरूरी है ? जरूरी है ? ट्रेन किसी भी समय आ सकती है ।”

विपिन : “समय तालिका में तो वह (समय) दिया है ।”

अजय : “तो क्या, ट्रेन किसी समय हो सकती है।”

विपिन : “यह एक छोटा स्टेशन है, बहुत छोटा । ऐसे स्टेशन पर हर दस मिनट में ट्रेन हो सकती है (क्या) ।”

इस पूरी यात्रा के दौरान, दोनों बच्चों की परस्पर बातचीत में हर वक्तव्य के साथ या तो प्रमाण मांगा गया या दिया गया । दावे और प्रति दावे, चुनौती देते हुए या बात को जांचते हुए । अक्सर उनके दावे अवलोकन से प्राप्त तार्किक निष्कर्षों पर आधारित थे। लेकिन विपिन अपने दावों को रेल यात्रा के अपने अधिक ज्ञान से बराबर पुख्ता करता था । वह दिल्ली से बिहार स्थित अपने गांव के लिए अनेक यात्राएं कर चुका था । अजय अपनी ओर से विपिन के दावों को चुनौती देने के लिए रेल की पटरी पर काम करने वाले लोगों से प्राप्त सूचनाओं का सहारा ले रहा था । उनके बीच परस्पर सवाल जबाब से कहीं कुछ अधिक घटित होता लग रहा था। तत्व मीमांसक चुनौतियां एक नैतिक चुनौती भी गढ़ती हैं । एक ‘गलत’ बयान ‘झूठे’ के बराबर था । यह अक्सर देखा गया है कि रोजमर्रा की जिंदगी में, ‘सत्य’ और ‘सदाचार’ परस्पर गड़मड़ हो जाते हैं ।

शब्द ज्ञान के स्रोत (शब्द प्रमाण) के रूप में है, यह ‘आप्त वाक्य’ या विश्वसनीय व्यक्ति के वचन के रूप में भी जाना जाता है। इससे यह अर्थ निकलता है कि असत्य बोलने वाला व्यक्ति विश्वसनीय व्यक्ति नहीं है । बच्चों के मामले में, ऐसा प्रतीत होता था कि यदि उनके द्वारा दावा किया गया ज्ञान झूठा पाया गया तो उनको झूठा कहलाने का खतरा होता था। इसलिए जिसके दावे को वे चुनौती देने वाले हैं या जिसके शब्दों पर संदेह कर रहे हैं उसके प्रति जांच में वे सावधानी रखते थे । किसी के दोस्तों में, यदि वे

ज्ञान के दावे को चुनौती देना चाहते तो साधारणतः यह मजाक में करते थे । किसी के शत्रुओं के मामले में ज्ञान के सारे दावों को चुनौती दी जाती थी । उनकी खुशी देखते ही बनती थी, जब किसी का शत्रु कोई ऐसी गलती करता और संतोषप्रद ‘प्रमाण’ के अभाव में यह कहा जाता कि वह झूठा है और इसका यकीन नहीं करना चाहिए। सत्य का ऐसा मूल्यांकन संज्ञानात्मक उद्देश्य की अपेक्षा सामाजिक अधिक प्रतीत होता है ।

सामान्यतः किसी की कही हुई बात को शंका की बजाय भरोसे से लिया जाता, यह इसका प्रमाण था कि बच्चे किस तरह सुनने वाले में विश्वास करने के लिए उपयुक्त दृष्टिकोण रचने के लिए सक्रिय उपक्रम करते थे । जैसे कि वे एक विशेष मानस तैयार करते ताकि वे जो कह रहे हैं उस पर शंका की बजाय विश्वास किया जाय । वे अक्सर अपनी बात किसी अधिकारिक संदर्भ से शुरू करते “मेरी मां कहती है...., मेरे बड़े भाई ने बताया ..... तुम्हे पता है, यह एक किताब में लिखा है, ..... टी.वी. पर वे दिखाते हैं ।” ऐसे आह्वान यह बताते प्रतीत होते हैं कि वे मानते हैं कि हम बच्चे हैं और यदि वे यह दिखायेंगे कि उनका ज्ञान किसी श्रेष्ठ तत्व मीमांसक स्रोत यथा किसी वयस्क या किसी स्थापित स्रोत जैसे किताबों या टी.वी. से प्राप्त है तो वे अधिक विश्वसनीय माने जायेंगे। “मेरी आंटी कहती है, एक व्यक्ति ने भविष्यवाणी की है कि सारी दुनिया 25 वीं शताब्दी में नष्ट हो जायेगी । यह एक किताब में लिखा है ।”

ज्ञान के दावे को स्वीकार योग्य बनाने की एक अन्य तकनीक में वे दावे की सत्यता के लिए प्रमाण देने की अपेक्षा अपनी ‘विशेषज्ञता’ प्रदर्शित करते थे । उदाहरणार्थ, उनमें से कई कहते, यह सत्य है कि व्हेल सबसे विशालकाय मछली है। लेकिन वे इस बात के समर्थन में कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध कराते । इसकी जगह वे उत्तेजित होकर व्हेल मछली के बारे में दूसरी ढेर सारी जानकारियां देना शुरू कर देते जिससे श्रोता यह स्वीकारता लगता कि वे व्हेल के बारे में काफी कुछ जानते हैं और इसलिए वे व्हेल के आकार में मामले में ठीक ही कहते होंगे ।

व्यक्तिगत जानकारी को रसेल ने ज्ञान के एक विशेष रूप में मान्यता दी थी । बच्चों के लिए ऐसी जानकारी की तात्कालिकता और महत्व है : “ये मैं यूं ही नहीं कहता । हमारे खेत हैं इसलिए मैं उसके बारे में जानता हूं ।” अपने निकट रिश्तेदारों के अनुभवों को भी उसके स्वयं के अनुभवों जैसा दर्जा प्राप्त था । “मेरे मामा वहां गये थे । उन्होंने देखा .....” यह बात उतनी ही विश्वसनीय प्रतीत होती थी यदि यह कहा जाता, “मैं वहां गया था और मैं ने देखा ।” राकेश शर्मा की अंतरिक्ष यात्रा बच्चों को अंतरिक्ष की जानकारियों को इसी व्यक्तिगत अर्थ में विश्वसनीयता प्रदान करती थी । वे इस बात से बहुत उत्तेजित थे कि वह (राकेश शर्मा)

अंतरिक्ष में जा चुका था और यह कि उसने वहां से देखा कि पृथ्वी गोल है। वे यह भी यकीन करते थे कि उसने चन्द्रमा की भी यात्रा की थी।

मैंने जानबूझकर कुछ ऐसे वाक्य शामिल किए थे जिन्हें बच्चे नहीं जानते हों। उदाहरण के लिए, “आर्किमिडिज यूनानी वैज्ञानिक था।” और “जब तुम क्षारक में अम्ल मिलाओगे, तुम्हें नमक और पानी मिलेगा।” मुझे आश्चर्य हुआ कि कुछ बच्चों ने इसे जानने का दावा किया या कि वे इन बातों को जानते थे। उन्होंने जोर देकर कहा: “जब हम अंग्रेजी माध्यम स्कूल में थे, हमें यह जानना होता था।” जो बच्चे अंग्रेजी माध्यम स्कूल में पढ़ चुके थे वे मेरे हर प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार प्रतीत होते थे, वे तुरंत यह कहते हुए उत्तर देते, “मैडम-यस।” जब मैं उनसे पूछती कि वे कैसे जानते हैं तो वे घबराकर चुप हो जाते। फिर उनमें से कोई कहने का साहस करता, “मैडम आपने पूछा और हमने बता दिया।” जैसे मैंने उनसे यह पूछकर कि उन्हें कैसे पाता, मैंने अच्छा नहीं किया। वे यह महसूस करते हैं कि चूंकि वे एक अंग्रेजी माध्यम स्कूल में पढ़ रहे हैं इसलिए उन्हें जानना चाहिए और वे ‘मुझे नहीं पता’ नहीं कह सकते।

इस प्राक्कल्पना को तब और बल मिला, जब सरकारी स्कूल के बच्चों के बीच भी यही प्रवृत्ति देखने में आयी। यहां उन्होंने कहा कि वे ‘जानते’ हैं क्योंकि वे सरकारी स्कूल में आने से पहले अंग्रेजी माध्यम स्कूल में पढ़ चुके हैं। इस प्रसंग में दो बच्चों के बीच अंतर साफ उभरकर आया :

“हवाई जहाज ऐसे ईंधन से चलते हैं जो पेट्रोल और डीजल का मिश्रण है।”

सतीश : “पता नहीं।”

जोगी : (बहुत आत्मविश्वास से) “वे पेट्रोल नहीं भरते। यह एक मशीन से चलता है। मैंने अंग्रेजी स्कूल में पढ़ा था कि ये ऐसे उड़ता है।”

सतीश : “पेट्रोल से नहीं उड़ता है।”

- तुम कैसे पता करोगे ?

सतीश : “मैं अपने भाई से पूछूंगा।”

जोगी : “मैं अपने चाचा, ताऊ या पापा से पूछूंगा।”

- मलेरिया गंदगी, गंदी हवा से फैलता है।

जोगी : “अंग्रेजी स्कूल में हमारी मैडम ने सैकिंड में हमें बताया था।”

- करोड़ों वर्ष पहले, पृथ्वी, सूर्य और सभी ग्रह एक बड़ी धूमती हुई गर्म बॉल की शक्ल में थे।

जोगी : “हां, यह सत्य है।”

सतीश : “हैं ?”

सतीश से “यह आप कैसे पता करेंगे ?”

सतीश जोगी से कहता है : “अब तुम बताओ, तुम्हें कैसे पता ?”

जोगी : “अंग्रेजी स्कूल में उन्होंने हमें बताया।”

सतीश : (उत्तेजित होकर) “हर बात में तुम कहते हो ‘अंग्रेजी स्कूल में’, मुझे नहीं पता।”

यहां सतीश ने कुछ उत्तेजना में यह अनुभव किया कि उसका मित्र जोगी ये कभी नहीं कहता, ‘मुझे नहीं पता’ और अंग्रेजी माध्यम स्कूल का छात्र होने के आधार पर ज्ञान का दावा करता है। काफी हद तक बच्चों के ज्ञान का महत्वपूर्ण स्रोत, उपदेशात्मक स्रोत था; उन्हें बताया गया था। शिक्षक और पाठ्यपुस्तकों से इतर, अन्य सूचना स्रोतों में टेलिविजन, बड़े भाई-बहिन और रिश्तेदार शामिल थे। अनेक बातें जिन्हें जानने का बच्चे दावा करते थे, उन्हें शिक्षकों द्वारा बतायी गयी थीं या उन्होंने पाठ्यपुस्तकों और गाइडों में पढ़ी थीं। “ये किताब में है और हमारे गुरुजी ने भी हमें यह बता रखा है।” यही अपने आप में इसके लिए पर्याप्त कारण प्रतीत होता था कि उसे सत्य मान लिया जाये। शिक्षक द्वारा कहे गये और किताब में छपे हुए शब्द दोनों ही विश्वास के दृष्टिकोण से लिये जाते थे और ये दोनों मिलकर सूचना को और ठोस बनाते थे।

विपिन : “गुरुजी ने हमको बताया, उससे पता चला।”

पवन : “यह किताब में है और आंटी ने हमें बताया है।”

विपिन : ज्यादातर बातें तो किताबों में लिखी हैं और सभा के दौरान गुरुजी हमें बताते थे।”

शिक्षक के ज्ञान का स्रोत जानने के लिए जब ज्यादा जोर दिया जाता तो आम राय यही प्रतीत होती थी कि शिक्षक को भी किसी ने बताया होगा और उन्होंने इसे किताबों में लिख दिया होगा। किसी भी मामले में, वे सीखे जाने वाले ज्ञान का अंतिम स्रोत जानने के बारे में उत्सुक नहीं थे जैसे कि मौखिक या लिखित शब्द के द्वारा संचार की पृष्ठभूमि क्या हो सकती थी।

- जो लोग किताबें लिखते हैं, वे ये सब बातें कैसे जानते हैं?

नीरज : “वे स्कूलों में पढ़ते हैं। तब वे किताबों में लिखते हैं। वे खाली खाली कॉपियां लेते हैं और उनमें लिखते हैं।”

वे ये सब जानते कैसे हैं ?

दिनेश : “पता नहीं।”

वीर सिंह : “ये (बातें) उनके दिमाग में आती हैं।”

नीरज : “वे अच्छी अच्छी बातें जानते हैं।”

आश्चर्य नहीं कि ‘पूछना’ जानने, ज्ञान अर्जित करने या किसी बात (वाक्य) की सत्यता की पुष्टि करने की सबसे महत्वपूर्ण पद्धति थी। जब बच्चों से कुछ पूछा जाता और उत्तर को लेकर वे निश्चित नहीं होते तो वे अक्सर कहते : “हम पूछेंगे और तब आपको बतायेंगे”, “मैं अपने बड़े भाई/बहिन, चाचा/पिता से

पूछूंगा, फिर बताऊंगा ।”

“मुझे नहीं पता ।”

- तुम कैसे पता करोगे ?

“हम अपने से बड़ों से पूछेंगे । गुरुजी, माता-पिता....”

सुलेमान : “घर बैठे-बैठे हम पता नहीं कर सकते । हम ट्रेन पकड़कर जा सकते हैं और पूछ सकते हैं । कुछ बातें हम टेलीफोन करके पता कर सकते हैं ।”

पूछना कोई अव्यवस्थित गतिविधि नहीं थी । जो लोग उम्र में बड़े थे उनसे ज्यादा चीजों के बारे में जानने की अपेक्षा की जाती थी, इसलिए अक्सर बच्चे उन्हीं से पूछने को कहते थे । “मैं अपने भाई से पूछूंगा । जॉनी से नहीं । मैं अपने बड़े भाई से पूछूंगा ।” इसके अलावा, जैसा कि सुलेमान ने बताया, किसी उपयुक्त व्यक्ति को पाकर भी कोई बात पूछी जा सकती थी । इसके उदाहरण के रूप में, अपने शरीर के संबंध में बच्चे कहते थे, “हम डाक्टर से पूछेंगे और आपको बतायेंगे”, इसी तरह पौधों के बारे में “हम किसी माली से पूछेंगे ।”

स्पष्टतः बच्चे इस बात के प्रति सचेत थे कि उनकी ज्ञानार्जन की गतिविधि, जो जानने वालों (शिक्षार्थी) के रूप में उनकी प्राथमिक गतिविधि थी, वयस्क समाज द्वारा पहले से अर्जित ज्ञान को पाने की दिशा में उन्मुख थी । अतः उनके लिए ‘शब्द-प्रमाण’ ज्ञान का प्राथमिक स्रोत था । ‘शब्द - प्रमाण’, शब्दों के माध्यम से पूर्व-अर्जित ज्ञान को जानना, केवल बच्चों द्वारा ही जानने की प्राथमिक पद्धति नहीं माना जाता था बल्कि उन्होंने इस समाज में ज्ञानार्जन के लिए प्रचलित सामान्य दृष्टिकोण को ही अपना लिया लगता था कि जो बड़े हैं, उन्हें भी किसी ने बताया है, इस तरह से सीखे हैं । ज्ञान सामान्यतया ‘नये’ के रूप में अनुभूत नहीं दिखता था, ‘नया रचा नहीं जाता’ बल्कि यह पहले से मौजूद है और इसे ‘अर्जित किया जाना’ है । ऐसा लगता है कि पहले से ज्ञात बातों में जो बातें महत्वपूर्ण हैं, जानने योग्य हैं, उन्हें ग्रहण करना है । पूर्ववर्तियों से इस ज्ञान को संरक्षित करना है और आगामी पीढ़ी को सौंप देना है ।

## निष्कर्ष

स्कूल और गांव के विस्तृत सामाजिक संदर्भ में बच्चे ‘जानने वालों के एक समूह’ के रूप में आते हैं । बच्चे दुनिया के बारे में जानने आते हैं । वे पूछते हैं और उन्हें बताया जाता है । वे वयस्कों और छपी हुई पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान में विश्वास करते हैं । कक्षा के ज्ञान-मीमांसक क्षेत्र में, सीखने का सबसे अहम पहलू यह दिखता है कि कौन ज्यादा जानता है ? ‘कौन ज्यादा जानता है और कौन कम’ इसे लेकर बच्चे सचेत रहते हैं । शिक्षण प्रक्रिया बच्चों को एक सोपान क्रमिक जंजाल में उलझा देती है । बोलने में विनम्रता, आज्ञापालन, अच्छे हस्त-लेख और अंग्रेजी जैसी

सांस्कृतिक रूप से मूल्यवान मानी जाने वाली चीजें बच्चे की आदर्श बालक के रूप में पहचान बनाती हैं और ये ही चीजें आगे चलकर उसकी ‘पढ़े लिखे आदमी’ के रूप में पहचान बनाने में मददगार होती हैं । प्रश्न पूछने के अवसर प्रमुखतः इसलिए नहीं प्रयुक्त और पैदा किए जाते कि बच्चे को क्या चीजें पता हैं बल्कि ये उसे अपनी जानकारी का प्रदर्शन करने के लिए जुटाए जाते हैं । इस माध्यम से बच्चे अपनी कक्षा के अभिक्रमिक सोपान क्रम में उच्च स्थान निर्धारण करने के लिए जद्दोजहद करते हैं । यह विश्वास वयस्कों की दुनिया में भी प्रचलित है कि प्रत्येक को समाज के अभिक्रमिक सोपान क्रम में जगह बनाने और आगे बढ़ने में मशकत करनी होगी ताकि बड़े आदमी का दर्जा हासिल किया जा सके । ऐसी स्थिति में ज्यादा नंबर लाना तो महत्वपूर्ण है ही, प्रस्तुत किये गये प्रश्नों का उत्तर देने की क्षमता इस प्रक्रिया में शक्ति का मुख्य स्रोत है । ज्ञान या ज्ञान प्राप्ति इस प्रकार मौजूदा सामाजिक दुनिया के लिए खुद को अनुकूल बनाने में घटित हो जाती है, वह सामाजिक यथास्थिति को परिवर्तित करने का काम नहीं करती ।

स्कूली शिक्षा जानकारी के ऐसे स्वरूप को संचालित करती है जिससे समाज में अपनी हैसियत बनाने की होड में शामिल होने की काबिलियत हासिल की जा सके और भविष्य में चाही गयी स्थिति के लिए तैयारी की जा सके । समाज की यह दुनिया बच्चों की आज की दुनिया से बाहर है । स्कूल का ढांचा इतना कडा है कि वहां प्रयुक्त शिक्षण-संदर्भों में इस बात के लिए कोई गुंजाइश नहीं जिससे बच्चा पाठ्यपुस्तकों से कक्षा में जो कुछ सीखता है, उस विषय वस्तु की सार्वजनीन व्युत्पत्तियों को अनुभव भी कर सके । भविष्य के प्रति मनोवैज्ञानिक रूप से इतना अधिक बंधे होने के कारण, यह ज्ञान ऐसी किसी संरचना की निर्मिति नहीं करता जिससे वास्तविक दुनिया को प्रत्यक्ष अनुभवों में जांच कर ठीक से आत्मसात किया जा सके । स्कूली शिक्षा का प्रकार्य कक्षा के अभिक्रमिक सोपान क्रम में बच्चे की ठीक सी जगह बनाने की प्रक्रियाओं से पूर्ण संतुष्ट होता प्रतीत होता है । इस ज्ञान की वास्तविकता को संरचना जांचने के किसी कठिन परीक्षण के अभाव में, बच्चों को यह नहीं लगता कि उन्होंने जो सीखा है उसको कोई और अर्थ दिया जाये या उससे कोई और अर्थ भी अर्जित किया जाये । स्कूल से बाहर की दुनिया स्कूलों की भीतरी दुनिया से पृथक है, बच्चा अपने परिवेशगत विश्वासों को भी साथ लेकर चलने के लिए स्वतंत्र है, उदाहरण के लिए यह बात कि घास बीजों से नहीं उगती; जबकि स्कूल में उसने जो पढ़ा है उसके हिसाब से यह बात गलत है । स्कूल में वह पढ़ता है, “सभी पौधे बीजों से पैदा होते हैं ।” बच्चे को एक शिक्षार्थी के रूप में स्कूल जिस तरह तैयार करता है, उसमें उसकी आज की स्थिति के बजाय भविष्य की स्थिति ज्यादा महत्वपूर्ण है जो उसे बनना है । आखिरकार, इसी कारण से स्कूली ज्ञान के

संदर्भ वर्तमान से कोई महत्वपूर्ण ज्ञानशास्त्रीय संबंध बनाने की प्रक्रिया को अवरुद्ध कर देते हैं और स्कूल में दुनिया को जिस तरह प्रस्तुत किया जाता है उसमें बाहरी दुनिया से तालमेल बिठाने की किसी रूपरेखा का प्रावधान नहीं है। एक जानने वाले के रूप में बच्चे की दो अवस्थाएं हैं - स्कूल के भीतर एक आत्मचेतन शिक्षार्थी के रूप में और स्कूल से बाहर सीखने के प्रति किसी भी तरह की जागरूकता से विहीन प्राणी के रूप में।

स्कूली बच्चे के इस ज्ञानात्मक जगत की यह स्थिति किसी भी शिक्षाविद् के लिए चिंताजनक है। यह एक ऐसी स्थिति है जहां भविष्य का दबाव इतना अधिक है कि ज्ञान की निर्मिति और यथार्थ के निर्माण की सभी सामान्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं स्थगित कर दी गयी हैं। इसके स्थान पर शब्दों से निर्मित ज्ञान ने एक वस्तुपरक चीज का स्थान ले लिया है जिसे प्राप्त करना है। इस रूप में यह पारंपरिक 'पराविधा' की तरह है जिसे याद करके अर्जित करना है। न केवल याद करने के अभ्यास के रूप में, बल्कि शिक्षक और शिक्षार्थी की भूमिकाएं जिस तरह व्याख्यायित की गई हैं तथा शिक्षक और शिक्षार्थी के संबंधों की प्रकृति से भी लगता है कि शिक्षा और स्कूल का जनश्रुतियों में वर्णित लोकरूप 'आधुनिक स्कूल' के भीतर भी सतत विद्यमान है।

इस लेखमाला में सामान्य स्कूल और इसकी शिक्षण-विधियों का वर्णन किया गया। इस की दुरावस्था से हममें से अधिकतर लोग परिचित हैं। इस लेखमाला में प्राथमिक स्कूल के बच्चे की दुनिया के आयामों और विभिन्न स्तरों की सूक्ष्म जानकारियां देने का व्यवस्थित प्रयास किया गया, साथ ही बच्चों की अभिव्यक्ति को प्रतिनिधित्व देने वाले स्थूल ब्यौरे प्रस्तुत किये गये। विभिन्न आयामों और स्तरों का सहसंबंध देखने की कोशिश की गयी ताकि इस दुनिया की रचना समझी जा सके। मैं मानती हूं कि इससे हमें स्कूल के कार्य-व्यापार और उसके अभिप्रायों को समझने की बेहतर दृष्टि मिलेगी। हम देख सकते हैं कि शिक्षा के उद्देश्यों को लेकर स्थानीय लोगों के विश्वासों और विचारों की अपनी एक संरचना है। इस में बच्चों की प्रकृति और उनकी पढ़ाई की प्रक्रिया को लेकर लोगों का जो सोच है वह स्कूल में बच्चों और शिक्षकों के व्यावहारिक क्रियाकलापों को समर्थित और पोषित करता है। स्कूल की गतिविधियां न केवल दरिद्र सूचनाओं पर निर्भर हैं बल्कि इनके पीछे दृष्टिकोणगत कमजोरी है और व्यावसायिक प्रतिबद्धता का अभाव है। पाठ्यक्रम के नवीनीकरण और सुधार की कार्यवाहियां बहुत आधी अधूरी हैं। इन्हीं सतही धारणाओं के कारण हम पाते हैं कि सामान्य भारतीय स्कूल गुणवत्ता युक्त शिक्षा नहीं दे पा रहे हैं।

यदि हम चाहते हैं कि मौजूदा शैक्षणिक प्रक्रियाओं को बदलकर ऐसी प्रक्रियाएं लागू की जाएं जो बच्चों में क्रियाशील ज्ञान की निर्मिति कर सकें, बच्चे ज्ञान की निर्मिति का प्रत्यक्ष

अनुभव पा सकें तो यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि हम शिक्षकों को एक सशक्त वैकल्पिक अस्मिता से संपन्न बनायें और नयी शैक्षणिक प्रक्रियाएं ठोस सैद्धांतिकी के आधार पर विकसित की गयी हों। शिक्षकों द्वारा प्रयुक्त शिक्षण-विधि इस बोध से समर्थित हो कि वे कौन हैं और कक्षा में जो कुछ कराया जा रहा है उस के क्या निहितार्थ हैं।

यह भी एक प्रश्न है कि स्कूल के ज्ञानशास्त्रीय क्षेत्र में 'स्थानीय ज्ञान' कैसे प्रविष्ट किया जाये। स्थानीय जानकारियों को और अधिक मात्रा में शामिल करते हुए पाठ्यपुस्तकों का पुनर्लेखन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है, लेकिन केवल इतना भर ही इसके लिए काफी नहीं होगा। हमें मौजूदा यथार्थ से बचकर निकलने की बजाय उसे स्कूली शिक्षा का एक मुद्दा बनाने की जरूरत है और इसे ऐसे रखना है कि यह बच्चों को प्रासंगिक लगे। कक्षा में ज्ञान-निर्मिति के कठोर ढांचे को लचीला बनाना चाहिए। इस संदर्भ में, इस अध्ययन का यह सुझाव है कि स्थानीय गांव के शिक्षक बच्चों के लिए अधिक महत्वपूर्ण हो सकते हैं। जबकि अध्ययन में यह आम धारणा पूरी तरह सही नहीं पायी गयी कि प्राथमिक स्कूल के बच्चे महिला शिक्षक के साथ ज्यादा सहज रहते हैं। जिन चार कक्षाओं का अवलोकन किया गया, उनमें पाया गया कि उन कक्षाओं में बच्चों की आवाजें ज्यादा सुनायी देती थीं जिनमें शिक्षक स्थानीय गांव के थे अन्य कक्षाओं में, बच्चे चुप बने रहते थे, भले ही शिक्षक महिला ही क्यों न हो।

अन्तिमतः, हम 'प्रगतिशील शिक्षाविदों' को चाहिए कि हम शिक्षा को व्याख्यायित और सूत्रबद्ध करने वाले स्थानीय देशज तरीकों पर ज्यादा ध्यान दें। अक्सर बच्चों और शिक्षा के बारे में हम जो अवधारणाएं बताते हैं और जो भाषा बोलते हैं उसने संवादहीनता पैदा कर दी है। मैं मानती हूं कि सरकार और गैर सरकारी संगठनों द्वारा सद्दिच्छापूर्वक आरंभ की गयी सुधारात्मक कार्यवाहियों के जमीनी स्तर पर जड़ नहीं जमा पाने का एक कारण यह भी है। अनेक शिक्षाकर्मियों को उस समय बड़ा धक्का लगता है जब वे पाते हैं कि समुदाय और बच्चों ने उनकी ऐसी किसी चीज को खारिज कर दिया जबकि वह 'साफ तौर पर' बच्चों के लिए बहुत अच्छी दिखायी देती थी। दोनों तरफ से दिये जाने वाले तर्क परस्पर भिन्न अवधारणाओं से निकले होते हैं। उदाहरण के लिए बच्चों के खेल-खेल में सीखने और सीखने में रटकर याद करने की भूमिका के तर्क-वितर्क को लिया जा सकता है। भारतीय शैक्षिक सिद्धांतकारों के सामने यह एक चुनौतीपूर्ण कार्यभार है कि वे एक ऐसी समझ और शब्दावली विकसित करें जो परस्पर सहमति हासिल कर सके। यदि हम अपनी प्रगतिशील व्याख्याओं के आग्रह में थोड़ी ढील दें और शिक्षा और सीखने के देशज तौर-तरीकों की अवधारणाओं को गंभीरता से लेना शुरू करें तो इस चुनौती को ठीक से लेने की शुरुआत की जा सकती है। ♦